● श्रीश्रीगुरु-गौराङ्गौ जयतः ●

स वै पुंसां परो धर्मो यतो भक्तिरधोक्षजे

धर्मः स्वनुष्ठितः पुंसां विष्वक्सेन कथासु यः

भागवत-पत्रिका

नोत्पादयेद्यदि रतिं श्रम एव हि केवलम्

अहैतुक्यप्रतिहता ययात्मा सुप्रसीदति ।।

सर्वोत्कृष्ट धर्म है वह जो आत्मा को आनन्द प्रदायक ।
भक्ति अधोक्षज की अहैतुकी विघ्नशून्य अति मंगलदायक ।।

सब धर्मों का श्रेष्ठ रीति से पालन करते जीव निरन्तर ।
किन्तु हरि-कथा-प्रीति न हो, श्रम व्यर्थ सभी, केवल बंधनकर ।।

वर्ष १० { गौराब्द ४७८, मास—नरायण २५, वार–अनिरुद्ध
बुधवार, २६ पौष, सम्वत् २०२१, १४ जनवरी १९६५ } संख्या ८

श्रीश्रीनवाष्टकम्

[श्रील-रघुनाथदास-गोस्वामि-विरचितम्]

गौरीं गोष्ठवनेश्वरीं गिरिधरप्राणाधिकप्रेयसीं
स्वीयप्राणपरार्द्धपुष्पपटली - निर्मञ्छ्यतत्पद्धतिम् ।
प्रेम्णा प्राणवयस्यया ललितया संलालितां नर्मभिः
सिक्तां तुण्डु विशाखया भज मनो राधामगाधां रसैः ।।१।।

स्वीयप्रेष्ठसरोवरान्तिकवलत् कुञ्जान्तरे सौरभोत्-
फुल्लत्पुष्प - मरन्दलुब्ध - मधुपश्रेणीध्वनिभ्राजिते ।
माद्यन्मन्मथराज्यकार्यमसकृत् संभालयन्तीं स्मरा-
मात्य - श्रीहरिणा समं भज मनो राधामगाधां रसैः ।।२।।

कृष्णापाङ्गतरङ्गतुङ्गिततरानंगासुरंगां गिरां
भङ्गया लंगिमसंगरे विदधतीं भंगं नु तद्रङ्गिणः ।
फुल्लत् - स्मेरसखीनिकायनिहितस्वाशीः सुधास्वादन-
लब्धोन्मादधुरोद्धुरां भज मनो राधामगाधां रसैः ।।३।।

जित्वा पाशककेलि - संगरतरे निर्वादविम्बाधरं
स्मित्वा द्विः पणितं धयत्यघहरे सानन्दगर्वोद्धुरे।
ईषच्छोणदृगन्तकोणमुदयद्रोमाञ्च कम्पस्मितं
निघ्नन्तीं कमलेन तं भज मनो राधामगाधां रसैः ॥४॥

अंसे न्यस्य करं परं बकरिपोर्बाढं सुसख्योन्मदां
पश्यन्तीं नवकाननश्रियमिमामुद्यद्वसन्तोद्भवाम्।
प्रीत्या तत्र विशाखया किसलयं नव्यं वितीर्णं प्रिय-
श्रोत्रे द्रागदधतीं मुदा भज मनो राधामगाधां रसैः ॥५॥

मिथ्यास्वापमनल्पपुष्पशयने गोवर्द्धनाद्रेर्गुहा-
मध्ये प्राग्दधतो हरेर्मुरलिकां हृत्वा हरन्तीं स्रजम्।
स्मित्वा तेन गृहीतकण्ठ - निकटां भीत्यापसारोत्सुका
हस्ताभ्यां दमितस्तनीं भज मनो राधामगाधां रसैः ॥६॥

तूर्णं गाः पुरतो विधाय सखिभिः पूर्णं विशन्तं व्रजे
घूर्णन्नीवककाञ्चिताञ्चि - नटनैः पश्यन्तमस्या मुखम्।
श्यामं श्यामदृगन्त - विभ्रमभरैरान्दोलयन्तीतरां
पद्माम्लानिकरोदयां भज मनो राधामगाधां रसैः ॥७॥

प्रोद्यत् - कान्तिभरेण वल्लववधूताराः परार्द्धात् पराः
कुर्वाणां मलिनाः सदोज्ज्वलरसे रासे लसन्तीरपि।
गोष्ठारण्य - वरेण्य - धन्य - गगने गत्यानुराधाश्रितां
गोविन्देन्दुविराजितां भज मनो राधामगाधां रसैः ॥८॥

प्रीत्या सुष्ठु नवाष्टकं पटुमतिर्भूमौ निपत्य स्फुटं
काक्वा गद्गदनिस्वनेन नियतं पूर्णं पठेद्यः कृती।
घूर्णन्मत्त - मुकुन्दभृंगविलसद्राधासुधावल्लरीं
सेवोद्रेकरसेन गोष्ठविपिने प्रेम्णा स तां सिञ्चति ॥९॥

अनुवाद—

जो अपने प्राणसमूहरूप पुष्पोंकी श्रेणियोंसे श्रीकृष्णके (आने-जानेवाले) मार्गकी आरती उतारा करती हैं अर्थात् सर्वदा उसी ओर उत्कंठापूर्वक निहारती रहती हैं, श्रीगिरिधारी कृष्णकी जो प्राणों से भी अधिक प्रियतमा हैं, प्राणप्रिय सखी श्री-ललिताजीके द्वारा जो प्रेमसे संलालिता हैं और श्रीविशाखाके परिहासपूर्ण वाक्योंद्वारा जो सुन्दर रूपसे परिषिक्त है, हे मन ! शृङ्गार आदि रसोंद्वारा उपलक्षिता प्रचुर गुणशालिनी उन गोष्ठेश्वरी गौरी श्रीराधाका ही तू भजन कर ॥१॥

सुगन्धित पुष्पोंके मकरन्द-पानमें मत्त मधुपोंके मनोहर शब्दोंसे सुशोभित अपने प्रियतम राधाकुण्ड के समीप विराजित कुञ्जमें कन्दर्पराज-मन्त्री श्रीकृष्ण के साथ जो उन्मत्त मन्मथ राज्यके समस्त कार्योंको निरन्तर संभाल रही हैं—उनका भलीभाँति निर्वाहकर रही हैं, हे मन ! शृङ्गार आदि रसोंसे उपलक्षिता प्रचुर गुणशालिनी उन श्रीमती राधिकाका तू भजन कर ॥२॥

जिनकी इन्द्रियाँ श्रीकृष्णकी अपाङ्ग-तरङ्गोंद्वारा अत्यन्त वर्द्धित - कन्दर्प हेतु नृत्य कर रही हैं, जो अपने नागर्य - कौशलसे श्रीकृष्णको काम समरमें पराजित कर हास्यवदना सखियोंकेद्वारा प्रदत्त अपनी अपनी अभिलाषारूप अमृतका पान करती हुई अत्यन्त उन्मादसे गर्वित हो रही हैं, हे मन ! शृङ्गार आदि रसोंसे उपलक्षिता प्रचुर गुणशालिनी उन श्रीमती राधिकाका तू भजन कर ॥३॥

"पासा-क्रीड़ामें विजयी होने पर तुम दो बार मेरे विम्बाधर ग्रहणके अधिकारी हो सकोगे"—श्रीमती राधिकेके इस पनको स्वीकार कर श्रीकृष्ण जब पासा-क्रीड़ारूप महासंग्राममें उनको जीतकर आनन्द और गर्वसे पूर्व प्रतिज्ञानुसार उनका अधर-पल्लव-ग्रहणके लिये प्रस्तुत हुए, तब जो श्रीमती-राधिका ईषत् कटाक्ष, रोमांच, कम्प और मधुर हास्य विस्तारपूर्वक लीलाकमलद्वारा श्रीकृष्ण पर आघात कर रही हैं, हे मन ! शृङ्गार आदि रसोंसे उपलक्षिता प्रचुर गुणशालिनी श्रीमती राधिकाका तू भजन कर ॥४॥

जो बकारि (बकासुरके शत्रु) श्रीकृष्णके कन्धों पर अपनी बायीं भुजा अर्पण करके तदीय सुसख्य भावसे अतिशय उन्मत्त होकर अभिनव वसन्तसम्भूत नवकाननकी शोभाको निहार रही हैं और जो वनमें विशाखाके साथ अतिशय आनन्द और प्रीतिसे ओत-प्रोत होकर शीघ्रतासे प्रियतम श्रीकृष्णके कानों में सुविस्तीर्ण नूतन पल्लवको (कर्णभूषणके रूपमें) धारण करा रही हैं, हे मन ! शृङ्गार आदि रसोंसे उपलक्षिता प्रचुर गुणशालिनी उन श्रीमती राधिका का तू भजन कर ॥५॥

श्रीगोवर्द्धन पर्वतकी कन्दरेमें विविध प्रकारके पुष्पोंसे निर्मित शय्या पर श्रीकृष्ण कपट भावसे निद्रित होनेपर श्रीराधिकाजी पहले उनकी मुरली चुरा कर जब पुनः उनकी मालाको चुराने लगीं, उस समय श्रीकृष्णद्वारा हँसकर उनके कंठके अधःप्रदेश-का स्पर्श किये जाने पर डरकर भागती हुई जिन्होंने अपने दोनों हाथोंसे अपने दोनों कुचोंका दमन किया

है अर्थात् दबा रखा है, हे मन! शृङ्गार आदि रसोंसे उपलक्षिता प्रचुर गुणशालिनी उन श्रीमती राधिकाका तू भजन कर ॥६॥

श्रीकृष्ण, बछड़ोंको आगे करके श्रीदाम आदि सखाओंके साथ व्रजमें प्रवेश करते समय चंचल युवतिवृन्दके अभिलषित नेत्र-नटन द्वारा श्रीमती राधिकाका वदनमण्डल दर्शन करते हैं, उस समय उन श्रीकृष्णको वशीभूत करनेके लिये अपने दृष्टि-विलाससे जो उन श्रीकृष्णको आन्दोलित करती है और जिनके आविर्भावसे अपना सौभाग्य प्रकट करनेके कारण चन्द्रावली-सखी पद्माको बड़ी ग्लानि उपस्थित होती है, हे मन! शृङ्गार आदि रसोंसे उपलक्षिता प्रचुर गुणशालिनी उन श्रीमती राधिका का तू भजन कर ॥७॥

उज्ज्वल रसविशिष्ट रासलीलामें भी जिनकी शोभा निरन्तर देदीप्यमान है, वैसी-वैसी गोप-वनितारूप असंख्य तारकाओंको जो अपनी प्रकृष्ट और उज्ज्वलकान्तिद्वारा मलिन कर रही हैं और जो श्रीवृन्दावनरूप उत्कृष्ट और धन्य गगन प्रदेशमें अनुराधारूपमें विविध प्रकारसे परिसेवित होकर गोविन्दरूप चन्द्रके समाजमें विराजमान हैं, हे मन! शृङ्गार आदि रसोंसे उपलक्षिता प्रचुर गुणशालिनी उन श्रीमती राधिकाका तू भजन कर ॥८॥

जो सुकृतिमान व्यक्ति भू-पतित होकर स्थिर बुद्धिसे प्रीतिपूर्वक गिड़गिड़ाकर और गद्गद स्वरसे स्पष्ट करके अर्थबोधके साथ इस नवाष्टकका नियत पाठ करते हैं, वे गोष्ठ-विपिनमें अर्थात् वृन्दावनमें श्रीकृष्णरूप भ्रमर मत्त होकर जिनके ऊपर मड़रा रहा है, वे विलास-शालिनी राधारूप अमृत-लताका प्रेमपूर्वक सेवारूप उद्रिक्त-रसद्वारा सिंचन करते हैं ॥९॥

प्रीतिकी रीति

बेचति ही दधि व्रजकी खोरी।
सिर कौ भार सुरति नहिं आवत, स्याम टेरत भइ भोरी॥
घर घर फिरत गुपालै बेचत, मगन भई मन ग्वारि किशोरी।
सुन्दर वदन निहारन कारण, अन्तर लगी सुरति की डोरी॥
ठाढ़ी रही बिथकि मारग मैं, हाट माँझ मटकी सो फोरी।
सूरदास प्रभु रसिक सिरोमनि, चित चिंतामनि लियौ अँजोरी॥

—सूरदास

श्रीनरोत्तम ठाकुरकी प्रार्थना

लालसामयी

गौराङ्ग बलिते हबे पुलक शरीर ।
हरि हरि बलिते नयने बबे नीर ॥
आरकबे निताई चाँद करुणा करिबे ।
संसार-बासना मोर कबे तुच्छ हबे ॥
विषय छाड़िया कबे शुद्ध हबे मन ।
कबे हाम हेरब श्रीवृन्दाबन ॥
रूप-रघुनाथ बलि हइबे आकूति ।
कबे हाम बुझब से युगल पीरीति ॥
रूप-रघुनाथ पदे रहू मोर आश ।
प्रार्थना करये सदा नरोत्तम दास ॥

वैध और रागानुग-भेदसे दो प्रकारकी प्रार्थना

चौंसठ प्रकारके भक्तिके अंगोंमें विज्ञप्ति या प्रार्थना भी एक है। वैध और रागानुग—दोनों प्रकारकी साधन भक्तियोंमें विज्ञप्तिका एक विशेष स्थान है। श्रीनरोत्तम ठाकुरकी प्रार्थनाएँ रागानुग भक्तोंके लिये विशेष उपयोगी हैं। जहाँ शास्त्रके शासन-वाक्योंके भयसे श्रवण-कीर्तन किये जाते हैं, वहीं वे वैधसाधन हैं। परन्तु राधाकृष्णकी सेवाकी प्राप्तिके लिये जो श्रवण-कीर्तन होते हैं, वे रागानुगा साधन हैं।

प्रार्थना और विज्ञप्तिके भेद—सम्प्रार्थनात्मिका

साधारणतः विज्ञप्ति तीन प्रकारकी होती है—(१) सम्प्रार्थना, (२) दैन्यबोधिका और (३) लालसामयी। इसके अतिरिक्त निष्ठामयी, मनः शिक्षामयी, विरहमयी और उपलब्धिमयी आदि नानाप्रकारकी विज्ञप्तियाँ हो सकती हैं। कृष्णके प्रति, भगवद्भक्तके प्रति, अपने मनके प्रति और कभी-कभी आश्रितजनों के प्रति भी विज्ञप्तियाँ देखी जाती हैं। अनुत्पन्न भावविशिष्ट व्यक्तियोंकी साधारण प्रार्थनाएँ "सम्प्रार्थनात्मिका" कहलाती हैं। अजात भाव साधकोंके लिये उपयोगी हों, इस रूपमें लिखी गयी प्रारम्भ वाली गीतिको कोई-कोई साम्प्रार्थनामयी मानते हैं, परन्तु वास्तवमें यह लालसामयी प्रार्थना है।

लालसामयी विज्ञप्ति

जब जातभाव (उत्पन्न भाववाले) व्यक्ति अपनी प्रतिष्ठाके भयसे अपनी सौभाग्यपूर्ण यथार्थ अवस्था को छिपाकर अजातभाव अर्थात् भाव उत्पन्न नहीं हुआ है—ऐसा भाव दिखलाते हैं, तब उनकी ऐसी लालसामयी प्रार्थनाओंको साधारण लोग संप्रार्थनात्मिका माननेका भ्रम करते हैं। श्रीशिक्षाष्टकका छठा श्लोक ऐसी ही लालसामयी प्रार्थनाका उदाहरण है—

"नयनं गलदश्रुधारया वदनं गद्गदरुद्धया गिरा ।
पुलकैर्निचितं वपुः कदा तव नाम ग्रहणे भविष्यति ॥"

और भी देखिये—

"कदाहं यमुनातीरे नामानि तव कीर्तयन् ।
उद्बाष्पः पुण्डरीकाक्ष ! रचयिष्यामि ताण्डवम् ॥"

इत्यादि लालसामयी विज्ञप्तियाँ इसी श्रेणीकी गीतियाँ हैं। श्रीचैतन्यचरितामृत अन्त्य २० वें परिच्छेदमें लिखित—

"प्रेमेर स्वभाव याहा प्रेमेर सम्बन्ध ।'

"सेई माने–कृष्णे मोर नाहि प्रेम-गन्ध ॥" २८

"आमार दुर्दैव—नामे नाहि अनुराग ॥" १६

"प्रेम धन बिना व्यर्थ दरिद्र जीवन ॥" ३७

और मध्य दूसरे परिच्छेद ४५ वीं संख्यामें लिखित—"न प्रेम-गन्धोऽस्ति दरापि मे हरौ" प्रभृति भावसमूह जातभावको निर्देश करनेके लिये विशेष रूपमें आलोच्य हैं।

विभिन्न भक्ति-अङ्गोंमें कीर्तन सर्वश्रेष्ठ है

भागवतोंके लिये पालनीय भक्त्यंगोंका श्रीमद्-भागवत और उसके अनुगत शास्त्रोंमें विस्तारपूर्वक उल्लेख किया गया है। श्रीहरिभक्तिविलासमें भी हम बहुतसे भक्त्यंगोंका वर्णन देख पाते हैं। श्रीमद्भागवतके श्रीप्रह्लाद-उपाख्यानमें नवधाभक्तिका उल्लेख है, जिसका भक्त समाजमें सदा-सर्वदा अनुशीलन होता है। श्रीभक्तिरसामृतसिन्धु-ग्रन्थमें श्रीमन्महाप्रभु द्वारा कथित चौसठ प्रकारके भक्तिके अङ्गोंका वर्णन है। पुनः इन चौसठ प्रकारके भक्त्यंगोंमेंसे "साधुसङ्ग, नामकीर्तन, भागवत-श्रवण। मथुरावास, श्रीमूर्तिर-श्रद्धाय सेवन ॥ सकल साधन श्रेष्ठ एइ पंच अङ्ग। कृष्णप्रेम जन्माय एइ पाँचेर अल्प सङ्ग ॥"—ये पाँच अङ्ग और इनमेंसे भी एक कीर्तनाख्या भक्तिके संयोगसे ही अन्याय चारों अङ्गों के साधनका उपदेश श्रीचैतन्यमहाप्रभुजीने विशेष रूपसे दिया है।" कीर्त्तनीयः सदा हरि।'–श्लोकमें 'सदा'–शब्द द्वारा अन्यान्य अङ्गोंके-साधनकी स्वतन्त्रताका कालगत व्यवधान निरस्त हुआ है। अर्थात् कीर्तनके साथ ही दूसरे-दूसरे अङ्गोंका आचरण कर्त्तव्य है। तात्पर्य यह कि हरि संकीर्तन सर्वश्रेष्ठ भक्तिका अङ्ग है, केवल हरिसंकीर्त्तनसे ही सर्वार्थकी सिद्धि होती है। इसमें सभी अङ्ग अनुस्युत हैं। तथापि यदि कोई भक्तिसाधक पृथक् रूपमें किसी दूसरे अङ्गका अनुष्ठान करना चाहता है, तो उसे उस भक्तिअङ्ग (स्मरण, पूजन, आदि) के साथ-साथ हरिसंकीर्तन भी अवश्यमेव करना चाहिये। शिक्षाष्टक के प्रथम श्लोकमें संकीर्तनका सर्वश्रेष्ठ-अभिधेयत्व सुस्पष्ट है। रागानुग भक्तोंके एकमात्र आश्रय हैं—श्रीकृष्णनाम-कीर्तन।

श्रीगौर-नाम ही सबसे पहले कीर्तनीय है

कृष्ण और गौर अभिन्न हैं। श्रीगौरनाम पहले कीर्तन कर कृष्णनाम ग्रहण करना चाहिये। यही महाजनोंका पथ है। श्रीगौर-पदाश्रय छोड़कर श्रीकृष्णनाम-भजनका सिद्धान्त शुद्ध गौड़ीय भक्तजन स्वीकार नहीं करते। श्रीरूप गोस्वामीचरण कहते हैं–

नमो महावदान्याय कृष्णप्रेमप्रदाय ते।
कृष्णाय कृष्णचैतन्यनाम्ने गौरत्विषे नमः॥

नाम-भजनमें ही प्रयोजन सिद्धि है। नामकीर्तन से ही रूप, गुण और लीलाका स्फुरण होता है। नाम कीर्तन होनेपर अप्राकृत रूप गुण आदि अलौकिक विषयोंके समागमसे साधक-देहमें पुलक उदित होते हैं और नेत्रसे अश्रुधारा विगलित होती है। कृष्ण चैतन्य नाम साक्षात् अभिन्न कृष्ण हैं। कृष्ण-चैतन्यका रूप गौर है अर्थात् वे गौराङ्ग हैं। उनका गुण–महावदान्य है और उनकी लीला है—कृष्ण-प्रेम प्रदान करना। गौरनाम कीर्तन करते-करते रूप-गुण-

लीलाका उदय होने पर गौरनाम उच्चारणकारी अप्राकृत हो जाते हैं, उस समय गौराभिन्न हरिनाममें हरिके अप्राकृत रूप, गुण और लीला—ये सब प्रकाशित होते हैं। नाममें रूप आदिकी स्फुर्ति होने पर जीव अप्राकृत आनन्दमें विभोर होकर प्राकृत अनुभूतिको सर्वथा भूल जाते हैं। उस समय वे पुलकित हो उठते हैं, उनकी आँखोंसे निरन्तर अश्रु-धारा प्रवाहित होने लगती है। नाम-भजनसे अश्रु और पुलक अवश्य ही होंगे।

श्रीनामके बलपर कपटाचरण

श्रीनाम करने पर यदि अश्रु और पुलक न देखा जाय तो ऐसा समझना चाहिये कि नाम उच्चारण-कारीके नामापराधके कारण ही अश्रु-पुलकका उद्गम नहीं हो रहा है। कोई-कोई कोमलश्रद्ध व्यक्ति प्रतिष्ठा-लाभके लिये कपटतापूर्वक अश्रु-पुलकका प्रदर्शन करता है। इसीलिये श्रीमद्भागवतमें कहते हैं—

"तदश्मसारं हृदयं बतेदं, यद्गृह्यमाणैर्हरिनामधेयैः।
न विक्रियेताथ यदा विकारो, नेत्रे जलं गात्ररुहेषु हर्षः॥"

इस श्लोकद्वारा कपटतापूर्वक अश्रु-पुलकादिके प्रदर्शनकारियोंका वह आचरण अति निन्दनीय और त्याज्य बतलाया गया है। ऐसे लोगोंका हृदय सचमुच ही वज्रके समान कठिन है। यथार्थ बात तो यह है कि जिस सौभाग्यवान व्यक्तिको प्रेमकी प्राप्ति हो जाती है, वे तो स्वयंको सर्वदा प्रेमके गंधसे भी रहित बतलाते हैं। अर्थात् "मुझमें तनिक भी कृष्ण प्रेम नहीं है",—ऐसा ही कहते हैं। परन्तु मूढ़ और प्रतिष्ठाकामी दर्शक वैसे जातभाव (जिनके अन्दर भाव उदित हो चुका है) व्यक्तिको कठिन-हृदय, विचार-प्रधान और अनुदित भाववाला मान कर अपना ही अहित करता है।

श्रीनरोत्तम ठाकुरकी शिक्षा

श्रीनरोत्तम ठाकुरने श्रीरूपानुगजनोंमें स्वयं अत्यन्त उच्च आसन प्राप्त करने पर भी अपने अनुगतजन का कल्याण करनेके लिये जातरति भक्तोंके कीर्तनमें प्रयोजन-प्राप्तिके लिये लालसाविशिष्ट भजनका ही उपदेश किया है। अप्राकृत सम्बन्धज्ञानसे युक्त भक्त गौर-कृष्णनाम कीर्तनको ही अभिधेय भजन जानकर नामकीर्तन द्वारा आनन्दाश्रु और पुलकादि प्रयोजन लाभ करते हैं—ऐसा वस्तुनिर्देश और मङ्गलाचरण आदि किया है।

स्वतंत्ररूपमें लीलास्मरण रूपानुग भजन नहीं है

श्रीनामकीर्तनकारीके लिये श्रीकृष्णनाम या श्रीगौरनाम ही सम्बन्ध है, श्रीनामकीर्तन ही अभि-धेय भक्ति है और जिन्होंने कृष्णप्रेम प्राप्त कर लिया है, उनके लिये आनन्दाश्रु-पुलकादि ही प्रयोजन-लाभ है। अधिक क्या कहा जाय, प्रारम्भके पदमें "बलिते"—शब्दका प्रयोग कीर्तनके लिये ही किया गया है। रूप-दर्शन, गुण-श्रवण या लीला-स्मरणको श्रीनामकीर्तनसे पृथक् मानकर उनको स्वतन्त्र अभि-धेयभक्ति निर्णय करना श्रीठाकुर महाशयको अभिप्रेत नहीं है। 'श्रीनाम ही सदा-सर्वदा कीर्तनीय हैं—यही शिक्षा या उपदेश श्रीगौसुन्दरने शिक्षाष्टक में सबके लिये दिया है। इसके अतिरिक्त दूसरे उपदेश श्रीचैतन्यदेवके आश्रितजनोंके लिये नहीं हैं—ऐसा श्रीरूपानुग भक्तोंका विश्वास है। श्रीनाम-

कीर्तन छोड़कर लीला-स्मरणको स्वतन्त्र भक्ति-अंग मान कर केवल लीला-स्मरण करना रूपानुग-भजन पद्धति नहीं हैं। बल्कि लीला-स्मरण, गुण-श्रवण आदि अङ्ग कीर्तनके अधीन हैं। श्रीनाम ही सेवोन्मुख सेवककी अप्राकृत जिह्वा द्वारा कीर्तनीय हैं। श्रीरूप, गुण और लीला—ये सब सेवकके साधनकालीन ओष्ठके दर्शन, श्रवण या मननके विषय नहीं हैं। परन्तु अप्राकृत सेवोन्मुख अवस्थामें जो श्रीनामकीर्तन होता है, उस नाम कीर्तनमें ही सेवनोपयोगी भिन्न-भिन्न इन्द्रियोंमें श्रीरूप-गुण और लीलआदिकी स्फूर्त्ति होती है। श्रीमद्भागवत २।८।४ श्लोक—"शृण्वतः श्रद्धया नित्यं गृणतश्च स्वचेष्टितम्" की टीकामें श्रीविश्वनाथ चक्रवर्तीचरणने लिखा है—

"सोऽपि स्मरण - प्रवृत्तः श्रवण - कीर्तनवतो भक्तस्य नावश्यक इत्याह। शृण्वत इति स्वप्रयत्नं विनापि भगवान् स्वयमेव हृदयं प्रविशतीति। श्रवण-कीर्तनाधीनमेव स्मरणमिति ज्ञापितम्।"

संसार-वासनाको नष्ट करनेका उपाय

श्रीनित्यानन्द प्रभु अभिन्न बलदेव हैं। वे श्रीगौर सुन्दरके वैभवप्रकाश हैं। श्रीनित्यानन्द प्रभुके स्वरूप महावैकुण्ठमें सङ्कर्षणजी हैं। संकर्षणके ईक्षणसे कारणसमुद्रमें कारणशायी, गर्भसमुद्रमें हिरण्यगर्भ अन्तर्यामी परमात्मा और क्षीरसमुद्रमें क्षीरोदशायी व्यष्टि-महाविष्णु ब्रह्माण्डकी सृष्टि, रक्षा और पालन आदि करते हैं। इन तीन प्रकारके विष्णु-तत्त्वकी उपलब्धि होनेसे बद्धजीव 'संसार' से विमुक्त हो जाता है। पुरुषावतारोंके साथ मायाका सम्बन्ध रहने पर भी वे सभी मायाधीश हैं। बद्धजीव अविद्याग्रस्त होने पर मायिक - संसारमें हरिसेवाको भूलकर निजभोगमय वासनासे युक्त हो पड़ते हैं। श्रीनित्यानन्द स्वरूपका तत्त्वज्ञान होने पर उनकी कृपासे जीवकी संसार-वासना ध्वंश हो जाती है।

श्रीनित्यानन्दकी कृपासे वृन्दावनका दर्शन

जब जीवमें यह अभिमान दृढ़ हो जाता है कि "मैं नित्यानन्द प्रभुका सेवक हूँ", तब वह सांसारिक विषयोंको त्यागकर निर्मल हो जाता है। ऐसी दशामें प्राकृत भोगमय पदार्थोंकी ओर उसकी दृष्टि भूल कर भी नहीं जाती। इसके विपरीत वह प्रेम-नेत्रोंसे अप्राकृत भूमि—श्रीराधाकृष्णकी विहारस्थलीका दर्शन करने योग्य हो जाता है। श्रीनित्यानन्दकी "करुणा" ही जीवके अप्राकृत दिव्यज्ञान लाभ करनेका मूल है। इस विषयमें निम्नलिखित श्रीचैतन्य-चरितामृतके पदसमूह आलोच्य हैं—

नित्यानन्द पूर्ण करे चैतन्येर काम ॥ (आ. ५।१५६

आरे-आर कृष्णदास, ना करह भय।
वृन्दावने याह, ताहा सर्वलभ्य हय ॥५।१६५॥

जय जय नित्यानन्द, नित्यानन्द राम।
याँहार कृपाते पाइनु वृन्दावन धाम ॥५।२००॥

याँहा हैते पाइनु रूप-सनातनाश्रय।
यहाँ हैते पाइनु रघुनाथ - महाशय ॥५।२०१-२०२॥

जो लोग साधकरूपसे "वृन्दावन" दर्शन करके प्राकृत विषय सुखका ही अनुसन्धान करते हैं, उनको अप्राकृत वृन्दावनके दर्शनोंका सौभाग्य प्राप्त नहीं होता है।

श्रीरूप-रघुनाथके दास्यसे ही श्रीवृन्दावनीय राधाकृष्ण-प्रेमकी प्राप्ति होती है

श्रीगौरपार्षद श्रीरूप गोस्वामी और श्रीरघुनाथ दास गोस्वामी सदा-सर्वदा वृन्दावनमें निवास करते हैं। श्रीरूप गोस्वामी एवं रूपानुग आचार्य श्री-रघुनाथदास गोस्वामी रागानुग भक्तोंके परम आराध्य वस्तु हैं। ये ही गौरपदाश्रित गौड़ीय वैष्णवोंके सेव्य अप्राकृत वृन्दावनके अधिकारी हैं। उनके चरणकमलों की सेवाके लिये अतिशय उत्कंठा उत्पन्न होने पर रूपानुगचरणोपजीवियोंके राधाकृष्णकी प्रेम-विचित्रता की उपलब्धि होती है।

साधक और सिद्धरूपसे दो प्रकारकी सेवा

"सेवा साधक रूपेण सिद्धरूपेण चात्र हि।
तद्भाव लिप्सुना कार्या व्रजलोकानुसारतः॥"
(भ. र. सि. १।२।१५१)

श्रीरूप-रघुनाथ प्रमुख व्रजवासियोंके अनुगमनमें अन्तश्चिन्तित सेवनोपयोगी सिद्धदेहसे व्रजभावलुब्ध रूपानुगजन श्रीराधागोविन्दकी "मानस-भाव-सेवा" करते हैं। तथा श्रीरूप और रतिमंजरीके आनुगत्यमें सेवाभिलाषयुक्त होकर व्रजवासी गौर-पार्षदद्वय द्वारा प्रदर्शित आदर्श जीवन व्यतीत करते हुए साधक रूपमें श्रवण-कीर्तन करते हैं।

श्रीरूपानुगत्य ही लालसामय भजन है

श्रीनित्यानन्दकी करुणासे जीव अनर्थोंसे मुक्त होकर विषय-मुक्त होते हैं और अप्राकृत भूमिमें कृष्णाश्रित श्रीरूप और रतिमंजरीकी कृपा प्राप्तकर धन्य होते हैं—यही श्रीरूपानुगजनोंकी जीविका है। रूपानुगजनोंके कैङ्कर्यको छोड़कर अन्तरंग भक्तोंमें दूसरी कोई भी लालसा नहीं होती। श्रीनरोत्तम ठाकुरके "श्रीरूप-मञ्जरीपद" आदि पद समूह इसी आशाके प्रस्फुट-विकाश हैं।

—श्रील प्रभुपाद

श्रील प्रभुपादकी उपदेशावली

(१) जो हरि भजन नहीं करते वे सभी निर्बोध और आत्मघाती हैं।
(२) श्री हरिनाम-ग्रहण और भगवत् साक्षात्कार दोनों एक ही बात है।
(३) केवल आचार-रहित प्रचार कर्म-अंगके अन्तर्गत है। पर-स्वभावकी निंदा न कर आत्म-संशोधन करना चाहिए; यही मेरा उपदेश है।
(४) यदि हम श्रेय-पथ चाहते हैं, तो असंख्य जनमत का परित्याग करके भी श्रौतवाणी का ही श्रवण करना चाहिए।
(५) पशु, पक्षी, कीट, पंतग आदि योनियोंमें भ्रमण करते रहना अच्छा है, तथापि कपटताका आश्रय करना उचित नहीं, निष्कपट व्यक्तिका मंगल होता है।
(६) श्रीचैतन्यदेवके मनोऽभीष्ट-संस्थापक श्रीरूप गोस्वामीके चरणकमलोंकी धूलि ही हमारे जीवनकी एकमात्र आकांक्षाकी वस्तु है।

प्रश्नोत्तर

[गताङ्कसे आगे]

प्रश्न ६३—श्रीचैतन्यमहाप्रभुजीके पश्चात् शुद्ध भक्तिको विनष्ट करनेकी चेष्टा किन्होंने की थी ?

"श्रीचैतन्य महाप्रभुजीके अप्रकटके कुछ समय पश्चात् ही बाउल, सहजिया, कर्त्ताभजा आदि अप-सम्प्रदाय, स्मार्त्त-कर्मी, ब्राह्मण, ज्ञानी और हेतुवादि-गण वैष्णवोंको कलंकित करने की चेष्टा करने लगे। अभी भी ऐसे व्यक्तियोंकी कमी नहीं है। क्रमशः ऐसे व्यक्तियोंकी संख्या बढ़ रही है। श्रीहरिदास ठाकुरको 'ब्राह्मण' बनानेकी चेष्टा, श्रीईश्वरपुरीको 'शुद्र' या 'ब्राह्मण' वर्णमें भूषित करनेकी चेष्टा, ब्राह्मणोंको छोड़कर दूसरोंको वैष्णव शिक्षा प्रदान करनेकी अक्षमताको स्थापन करनेकी चेष्टा, आदि नितान्त अवैष्णवोचित सामाजिक उपद्रव बढ़ने लगे। इनसे भक्तिको कोई सहायता नहीं मिली। अतएव शुद्ध वैष्णवोंके लिये ये सब क्रियाएँ आदरणीय नहीं हैं।"

—'श्रीवैष्णवोंका वर्णाश्रम', स० तो० ११।१०

प्रश्न ६४—अवतारकी अप्रकट लीलाके पश्चात् वञ्चनाका उदय हो, तो भजन प्रयासीको क्या करना चाहिये ?

"अवतार अप्रकट होने पर जो सब वञ्चनाएँ जगतमें उदित होंगी, उनसे साधकका निश्चय ही पतन होगा। भजन प्रयासियोंको उन सब वञ्चनाओं से सतर्क रहना चाहिये।"

—आ० वि० भा० टी.

प्रश्न ६५—कलिके दास कौन हैं ?

"कृष्णमन्त्रमें गौरपूजा या गौरमन्त्रसे कृष्णपूजा —दोनोंमें भेद नहीं है। जो इसमें भेदबुद्धि करते हैं, वे नितान्त अनभिज्ञ और कलिके दास हैं।"

—जै. ध. १४ वाँ अ.

प्रश्न ६६—बहुतसे व्यक्ति विद्ध वैष्णवधर्मको ही शुद्ध वैष्णवधर्म क्यों कहते हैं ?

"कलिके दोषसे बहुतसे व्यक्ति शुद्ध वैष्णवधर्म को न समझनेके कारण विद्ध वैष्णवधर्मको ही वैष्णवधर्म कहते हैं।"

—जै. ध. ४था अ.

प्रश्न ६७—महाप्रभुजीके धर्ममें क्या किसी प्रकारके प्रकृति-सङ्गका समर्थन है ?

"छोटे हरिदास स्वयं प्रकृति होकर पुरुषभावसे दूसरी प्रकृतिसे सम्भाषण करनेके कारण दूर किये गये थे। धूर्त्त लोग "प्रकृति हइया करे प्रकृति-सम्भाषण" इस पद्यका दुष्ट अर्थ कर इन्द्रियोंको चरितार्थ करते हैं। साधु वैष्णवगण उनकी उपेक्षा करते हैं। गृहस्थोंके लिये विवाहित स्त्रीसङ्ग भजनका अङ्ग नहीं हैं। केवल संसार यात्रा निर्वाहके लिए उसे निष्पाप स्वीकार किया गया है।"

—'सहजिया-मतका हेयत्व', स. तो. ५।६

—श्रील भक्तिविनोद ठाकुर

संदर्भ-सार

[तत्त्व-सन्दर्भ २]

इतिहास (रामायण और महाभारत) और पुराणसमूह पञ्चम वेद हैं । वायु पुराणमें इनके पञ्चमवेदत्वका तथा इनके आविर्भावके कारणका उल्लेख है—

इतिहास-पुराणानां वक्तारं सम्यगेव हि ।
माञ्चैव प्रतिजग्राह भगवानीश्वरः प्रभुः ॥
एक आसीद् यजुर्वेदस्तं चतुर्द्धा व्यकल्पयत् ।
चातुर्होत्रमभूत्तस्मि स्तेन यज्ञमकल्पयत् ॥
आध्वर्य्यवं यजुर्भिस्तु ऋग्भिर्होत्रं तथैव च ।
औदगात्रं सामभिश्चैव ब्रह्मत्वं चाप्यथर्वभिः ॥
आख्यानैश्चाप्युपाख्यानैर्गाथाभिर्द्विज-सत्तमाः ।
पुराण-संहिनाश्चक्रे पुराणार्थविशारदः ॥

वायु पुराणमें श्रीसूतजी शौनकादि ऋषियोंसे कह रहे हैं—भगवान् ईश्वर प्रभु वेदव्यासजीने मुझ को इतिहास-पुराणोंका प्रधान वक्ता बनाया । पहले केवल एक यजुर्वेद था । श्रीवेदव्यासने उस एक वेद को चार भागोंमें विभक्त किया । उनसे चार ऋत्विकों द्वारा चातुर्होत्र यज्ञका निर्माण हुआ । उसमें से यजुर्वेद विभागमें अध्वर्युकर्म, ऋग्वेदविभागमें होतृकर्म, सामवेद विभागमें उद्गातृकर्म और अथर्ववेद विभागमें ब्रह्मकर्म कल्पित हुआ । तत्पश्चात् पुराणार्थ-विशारद श्रीवेदव्यासने आख्यान और गाथा—इनके सन्निवेशसे पुराण और इतिहास का संग्रह किया । अध्वर्यु लक्षण वेदके कुछ अंशों को ग्रहणकर वेदके यजुः आदि चार भागोंमें विभक्त होने पर शेष बचा हुआ अंश भी यजुर्वेद ही कहलाया । इस बचे हुए यजुर्वेदसे ही पुराण और इतिहास प्रकाशित हैं । इसीलिये इतिहास और पुराणको पञ्चमवेद कहा गया है । मत्स्यपुराणमें भी भगवानका कथन है—

कालेनाग्रहणं मत्वा पुराणस्य द्विजोत्तमाः ।
व्यासरूपमहं कृत्वा संहरामि युगे-युगे ॥

कालके प्रभावसे मनुष्योंकी धारणाशक्ति जब ऐसी क्षीण हो जाती है कि वे लोग विपुल पुराणों का अर्थ सम्यक् रूपमें धारण करनेमें असमर्थ हो जाते हैं, तब मैं ही (भगवान्) व्यासरूपमें प्रकट होकर उन पुराणोंका संकलन करता हूँ । इसके द्वारा ऐसा सहज हो जाना जाता है कि पुराण पूर्व सिद्ध हैं । साधारण लोग भी उनको अनायास ही धारण कर सकें—इसलिये भगवानने उनका संक्षेपमें संकलन किया है ।

"चतुर्लक्ष प्रमाणेन द्वापरे-द्वापरे सदा ।
तदष्टादशधा कृत्वा भूर्लोकेऽस्मिन् प्रभाष्यते ॥
अद्याप्यमर्त्यलोके तु शतकोटिप्रविस्तरम् ।
तदर्थोऽत्र चतुर्लक्षः संक्षेपेण निवेशितः ।"

तात्पर्य यह कि पुराणमें श्लोकोंकी पूरी संख्या सौ करोड़ अर्थात् एक अरब हैं । यह एक अरब

श्लोकोंवाला पूर्ण पुराण आज भी स्वर्गलोकमें विद्यमान है। उसीका सारांश चार लाख श्लोकोंवाला पुराण भूमण्डलमें प्रचारित है। ये ही चार लाख श्लोक श्रीव्यासजी द्वारा प्रति द्वापर युगमें अठारह भागोंमें विभक्त किये जाकर अठारह पुराणोंके रूपमें प्रचारित होते हैं।

ब्रह्मा, होता, अध्वर्यु और उद्गाता—इन चारों यज्ञ-सम्पादकों को ऋत्विक कहा जाता है। पहले ये चारों केवल एक ही वेदसे कार्य सम्पादन करते थे। पीछेसे चातुर्होत्र कर्मकी सुविधाके लिये एक ही वेदके चार विभाग हुए। वेदीनिर्माण आदि यज्ञ-शरीर सम्पादनरूप अध्वर्युकी अध्वर क्रियाका वर्णन यजुर्वेद विभागमें संग्रहीत हुआ। इसी प्रकार वेदी पर होम आदि यज्ञालंकार सम्पादकरूप होता की होतृ क्रियाका ऋग्वेद विभागमें, होम आदिके समय उद्गाताकी श्रीविष्णुस्मरणादि उद्गान क्रियाका सामवेद विभागमें और त्रुटिसंशोधन और पर्यवेक्षण आदि ब्रह्माकी ब्रह्म क्रियाका अथर्ववेदविभागमें सन्निवेश किया गया। तत्पश्चात् चातुर्होत्र कर्मके लिये उपयुक्त देशकालपात्रका निर्वाचन करनेमें विशेष उपयोगी आदिके लिये और अन्यान्य आवश्यक ज्ञातव्यका विषयोंका साधारण जनतामें विस्तार करने के लिये यजुर्वेदका बचा हुआ इतिहास-पुराणात्मक एक अरब श्लोकोंवाले अंशका संक्षेपमें सारांश ग्रहण कर पाँच लाख श्लोकोंको ही मर्त्यलोकमें प्रकाशित किया गया है। अतः पृथ्वीलोकमें केवल पाँच लाख श्लोकोंवाले इतिहास-पुराण प्रकटित हैं। इनमेंसे इतिहास अर्थात् महाभारतमें एक लाख श्लोक हैं तथा अठारह पुराणोंमें कुल मिलाकर चारलाख श्लोक हैं। इस प्रकार पुराण इतिहास यजुर्वेदके ही अंश हैं। अतः वे वेद ही हैं।

आख्यानका अर्थ पञ्च लक्षणात्मक पुराणसे है। पाँच लक्षण ये हैं—सर्ग, प्रतिसर्ग, वंश, मन्वन्तर और वंशानुचरित। परमेश्वरसे आकाशादि पञ्चभूत, पञ्च तन्मात्राएँ, ग्यारह इन्द्रियाँ और महत्तत्त्व आदि की सृष्टिको सर्ग कहते हैं। ब्रह्मा द्वारा स्थावर और जंगम की सृष्टि—विसर्ग है। ब्रह्माके द्वारा सृष्ट राजाओंकी वंशावली—वंश है। मनु और मनुके पुत्रोंके सचित्र वर्णनके द्वारा सदुपदेश—मन्वन्तर है। पूर्व राजाओं एवं उनके वंशधरोंके चरित्र वर्णन —वंशानुचरित है। पुरावृत अर्थात् पुराने वृतांत और शुक-परीक्षित सम्वाद आदि—उपाख्यान है।' छन्दविशेषको गाथा कहते हैं। इन सबके द्वारा वेदव्यासने पुराण और महाभारतका प्रकाश किया है।

वेद अपौरुषेय हैं। जो ग्रन्थ पुरुष (जीव) द्वारा रचित न हो अर्थात् ईश्वरसे प्रकटित है, उसे अपौरुषेय कहते हैं। पुराण भी पञ्चमवेद होनेके कारण अपौरुषेय हैं। परन्तु कालके प्रभावसे जब पुराण अप्रकट हो जाते हैं, तब देवर्षि नारदकी प्रेरणासे श्रीवेदव्यास द्वारा श्रीमद्भागवत पुनः प्रकटित होते हैं। जीव द्वारा रचित ग्रन्थादि भ्रम-प्रमादादि दोषोंसे युक्त होनेके कारण प्रमाण कोटिमें स्वीकृत नहीं हैं। पुराण अपौरुषेय होनेके कारण वेद जैसे प्रमाण हैं।

भारत-व्यपदेशेन ह्याम्नायार्थः प्रदर्शितः।
वेदाः प्रतिष्ठिताः सर्वे पुराणे नात्र संशयः॥
(विष्णुपुराण)

विष्णुपुराणके इस श्लोक द्वारा यह विदित होता है कि भगवान् वेदव्यासने महाभारत-प्रकाशके बहाने सम्पूर्ण वेदका सारार्थ प्रकाशित किया है एवं पुराणों में निखिल वेद प्रतिष्ठित हैं, इसमें सन्देह नहीं। पद्मपुराणमें व्यासदेवजीके सम्बन्धमें कहा गया है—

द्वैपायनेन यद्बुद्धं ब्रह्माद्यैस्तन्न बुध्यते।
सर्वबुद्धं स वै वेद तदबुद्धं नान्यगोचरः॥

—द्वैपायन वेदव्यासने जो समझा था, ब्रह्मा आदि देवगण भी उसे न समझ पाये थे। सम्पूर्ण ज्ञातव्य विषयोंको वे विदित थे, किन्तु उनके विदित विषयको दूसरे नहीं जानते थे। उन्होंने वेदका विस्तार किया था, इसलिये उनका नाम वेदव्यास है।

स्कन्दपुराणमें वेदव्यासके आविर्भावका कारण बतलाते हुए कहते हैं—

नारायणाद्विनिष्पन्नं ज्ञानं कृतयुगे स्थितम्।
किंचित्तदन्यथा जातं त्रेतायां द्वापरेऽखिलम्।
गौतमस्य ऋषेः शापाज् ज्ञानेत्वज्ञानतां गते।
संकीर्णबुद्धयो देवा ब्रह्मरुद्रपुरःसराः।
शरण्यं शरणं जग्मुर्नारायणमनामयम्॥
तैर्विज्ञापित - कार्यस्तु भगवान् पुरुषोत्तमः।
अवतीर्णो महायोगी सत्यवत्यां पराशरात्।
उज्जहार भगवान् वेदानुज्जहार हरिः स्वयम्॥

नारायण द्वारा प्रकाशित ज्ञान सत्ययुगमें सम्पूर्ण रूपमें था। त्रेतायुगमें उस ज्ञानमें कुछ-कुछ विकार हो गया। तदनन्तर द्वापरयुगमें गौतम ऋषिके अभिशापसे ज्ञान अज्ञान द्वारा आवृत होनेके कारण लोग स्वरूप-उपलब्धि करनेमें असमर्थ होने पर ब्रह्मा और रुद्र आदि देवगण शुभाशुभ - विचार-विमूढ़ होकर शरणागत पालक निर्विकार श्रीनारायण के शरणापन्न हुए। देवताओंकी इस विषयमें प्रार्थना सुनकर पुरुषोत्तम हरिने पाराशरके औरससे सत्यवतीके गर्भसे महायोगी व्यासके रूपमें अवतीर्ण होकर लुप्तप्राय वेदोंका उद्धार किया।

गौतम ऋषिके शापका कारण:—

गौतम बड़े तेजस्वी एवं प्रतिभासम्पन्न ऋषि थे। उन्हें ऐसा वर प्राप्त था कि वे जितना चाहे राशि-राशि अन्न पैदा कर सकते थे। एक समय भीषण दुर्भिक्ष पड़ा। चारो ओर अन्नके लिये हाहाकार मच गया। लोग देश छोड़कर दूसरे-दूसरे देशोंमें भागने लगे। उस समय गौतम ऋषिने आस-पासके समस्त ब्राह्मणोंको अपने आश्रयमें रखकर प्रचुर मात्रामें सबको भोजन कराने लगे। कुछ समयके अनन्तर जब दुर्भिक्ष समाप्त हो गया, तब ब्राह्मणोंने अपने - अपने घरोंको लौटनेके लिये गौतमजीसे आज्ञा माँगी, परन्तु गौतमजीने उनको जाने नहीं दिया। इस पर ब्राह्मणगण किसी प्रकारसे जानेके लिये बहाना खोजने लगे। अन्तमें उन्होंने मायाद्वारा एक गाय बनायी और उसे उठाकर उस मार्गके बीचो-बीचमें खड़ाकर दिया, जिसपर गौतम ऋषि भोर होमें आया-जाया करते थे। वह गाय बीच रास्तेमें इस प्रकार जानबूझकर ही खड़ी कर दी गयी थी कि गौतमके अंगके स्पर्श होते ही गिर जाय। दूसरे दिन बड़े ही तड़के गौतम ऋषिके अंग-स्पर्शसे मायाकी गाय गिर पड़ी और ब्राह्मणोंने पूर्व परिकल्पनाके अनुसार गौतमजीके ऊपर गोहत्याका कलंक लगाकर उनके आश्रमसे चल दिया। तदनन्तर गौतमजी गोहत्याका प्रायश्चित्त कर जब ब्राह्मणोंकी कपटताको अवगत हुए तब उन्होंने यह अभिशाप दिया कि आजसे ज्ञान अज्ञान द्वारा आवृत हो जाय। इसी अभिशापसे समस्त लोगोंका ज्ञान लुप्त हो गया था।

स्कन्दपुराणमें पुराणकी विशेषता बतलाते हुए कहते हैं—

वेदवच्चिश्चलं मन्ये पुराणार्थं द्विजोत्तमाः।
वेदाः प्रतिष्ठिताः सर्वे पुराणे नात्रसंशयः॥

बिभेत्यल्पश्रुताद् वेदो मामयं चालयिष्यति ।
इतिहास - पुराणैस्तु निश्चलोऽयं कृतः पुरा ॥
यन्न दृष्टं हि वेदेषु तद्दृष्टं स्मृतिषु द्विजाः ।
उभयोर्यन्न दृष्टं हि तत् पुराणैः प्रगीयते ॥
पुराणं नेव जानाति न च स स्याद्विचक्षणः ॥

हे द्विजोत्तमगण ! जिस प्रकार वेदोंका अर्थ अनादिकालसे सर्ववादी सम्मति द्वारा स्वीकृत होता आ रहा है, कोई भी उसे अस्वीकार नहीं करता, उसी प्रकार पुराणार्थ सम्बन्धमें भी मेरी मान्यता है। वेदमें वर्णित सारे विषयोंकी प्रतिष्ठा पुराणमें है। इसमें तनिक भी सन्देह नहीं है । अल्पशास्त्रज्ञ व्यक्ति कुसिद्धान्तपूर्ण गलत अर्थ करके मुझे विचलित करेंगे--वेदको ऐसा भय उपस्थित होने पर सृष्टिके पूर्व श्रीभगवानने इतिहास-पुराणद्वारा वेदको निश्चल किया । वेदोंमें जो विषय लक्षित नहीं होते, वे मनु आदि स्मृतियोंमें देखे जाते हैं और वेद एवं स्मृतियोंमें जो नहीं है उसका भी वर्णन पुराणोंमें मिलता है। अतएव जो लोग अङ्ग और उपनिषदोंके सहित सम्पूर्ण वेदको ज्ञात हैं, किन्तु पुराणोंको अवगत नहीं हैं, उन्हें बुद्धिमान या शास्त्रवेत्ता नहीं कहा जा सकता है ।

पुराणमें विभिन्न देवताओंकी महिमा और उपासना विधिका वर्णन देखकर अतत्त्वज्ञ व्यक्ति पुराणोंका तात्पर्य ग्रहण करनेमें असमर्थ हो पड़ते हैं। इसलिये उनको उपास्य-सम्बन्धमें भी सन्देह पैदा हो जाता है। इसलिये मत्स्यपुराणमें इस सन्देहका निराकरणके लिये पुराणोंके त्रिविध विभागोंका वर्णन करते हैं—

पंचांगं च पुराणं स्यादाख्यानमितरत् स्मृतम् ।
सात्त्विकेषु च कल्पेषु माहात्म्यमधिकं हरेः ॥
राजसेषु च माहात्म्यमधिकं ब्राह्मणो विदुः ॥
तद्वदग्नेश्च माहात्म्यं तामसेषु शिवस्य च ।
सङ्कीर्णेषु सरस्वत्या पितृणांच निगद्यते ॥

पुराण, सर्ग-विसर्ग आदि पाँच लक्षणोंसे युक्त होते हैं। इन पाँच लक्षणोंके अतिरिक्त आख्यान नामक एक और भी लक्षण उनमें लक्षित होता है। इसके अतिरिक्त सात्त्विक, राजसिक और तामसिक भेदसे पुराण तीन प्रकारके होते हैं। सात्त्विकपुराणों में श्रीहरिकी महिमाका वर्णन अधिक रूपमें है। राजसिक पुराणोंमें ब्रह्माकी महिमा अधिक देखी जाती है तथा तामसिक पुराणोंमें अग्नि, शिव आदिकी महिमाका अधिक वर्णन है । इसके अतिरिक्त सकीर्णशास्त्रोंमें (सत्त्वरजस्तमोमय विविध प्रकारके शास्त्रोंमें) सरस्वती और पितृलोककी महिमाका वर्णन है ।

सात्त्विक पुराण—श्रीमद्भागवत, विष्णुपुराण, पद्मपुराण, नारदपुराण, गरुडपुराण और वराह पुराण।

राजसिक पुराण--ब्रह्म, ब्रह्माण्ड, ब्रह्मवैवर्त्त, भविष्य, वामन, और मार्कण्डेय ।

तामसिक पुराण--स्कन्द, अग्नि, शिव, मत्स्य, कौर्म और लिङ्गपुराण ।

जिस प्रकार गुणोंमें सात्त्विक श्रेष्ठ है, उसी प्रकार पुराणोंमें भी सात्त्विक पुराण श्रेष्ठ हैं। पुनः सात्त्विक पुराणोंमें भी श्रीमद्भागवत सर्वश्रेष्ठ हैं।

—त्रिदण्डि स्वामी श्रीमद्भक्तिभूदेव श्रौती महाराज

श्रीरामानुजाचार्य

यद्यपि श्रीरामानुजाचार्यसे ही श्रीसम्प्रदायका अधिक प्रचार हुआ है तथापि उनके पूर्व भी श्री-बोधायन, द्रमिड, टंक, गुहदेव, पठकदमन, नाथमुनि एवं आलवन्दार (यमुनाचार्य) आदि अनेक प्राचीन महापुरुषोंने विशिष्टाद्वैतवादका ही प्रचार तथा पुष्टि-साधन किया है । श्रीरामानुजने तो श्रुति, स्मृति, उपनिषद्, पुराण महाभारतादि तथा प्राचीन महा-त्माओंके ग्रन्थादिके आधार पर उसे दृढ़तर भित्ति पर सुप्रतिष्ठित किया है ।

श्रीरामानुजके पूर्वाचार्य आलवर भक्तगण अधिकांश रूपमें भजनानन्दी थे तथा संकीर्त्तनके माध्यमसे ही उन्होंने भजन-शिक्षाका प्रचार किया था । श्रीयामुनाचार्यके समयसे इस सम्प्रदायकी दिशा में परिवर्तन होना प्रारम्भ हुआ और श्रीरामानुजके समय तक यह सम्प्रदाय वेदान्त-क्षेत्रमें प्रवेश कर चुका था, विरुद्ध मतोंका खण्डन कर स्वमत-प्रतिष्ठापर इसी कालमें सर्व प्रथम अधिक बल दिया जाने लगा, जिसका पूर्ण एवं विकसित रूप रामानुजकृत "श्रीभाष्य" है । वास्तवमें श्रीरामानुजचार्य ही श्रीसम्प्रदायके श्रेष्ठ आचार्य थे ।

बालक लक्ष्मण और उसकी प्रतिज्ञाएँ

श्रीरामानुजका जन्म ९३८ शकाब्द (=१०१६ ई०) चैत्र, शुक्ला पंचमीकी पावन तिथिको मद्रास से लगभग २६ मील पश्चिम श्रीपैरेम्बदूर नामक ग्राममें हुआ था । उनके पिताका नाम श्रीकेशवाचार्य और माताका नाम कान्तिमती था । श्रीरामानुजको बाल्यकालमें लक्ष्मण देशिकके नामसे सम्बोधित किया जाता था । बचपनसे ही लक्ष्मण ही श्रीविष्णु-भक्तिके प्रति स्वाभाविक प्रीति थी । कहा जाता है कि बालक लक्ष्मण शूद्र कुलोत्पन्न श्रीकाँची नामक एक परम भागवत्-भक्तके संसर्गमें आकर उनकी सेवा-शुश्रूषा बड़ी श्रद्धापूर्वक किया करते थे । श्रीकाँचीके साथ सत्सङ्गका व्यापक प्रभाव लक्ष्मण देशिक पर पड़ा । १६ वर्षकी आयुमें माता-पिताके आग्रह पर लक्ष्मणका विवाह-संस्कार विधिवत् सम्पन्न हुआ । किन्तु कुछ ही वर्ष व्यतीत होने पर श्रीकेशवाचार्यका परलोक गमन हो गया । इस दैवी प्रकोप के भाजन लक्ष्मणको अपने अध्ययनके लिए अत्यन्त चिन्तित देखकर, काँचीपुरीके श्रीयादव प्रकाश (यादवाचार्य) नामक एक अद्वैतवादी विद्वान्ने उन्हें आश्रय देकर वेदान्त व उपनिषदोंकी शिक्षा देनी प्रारम्भ की; किन्तु लक्ष्मणका यह अध्ययन "तस्य यथा कप्यासं पुण्डरीकमेवमक्षिणी" (छान्दोग्योप-निषद् १-६-७) मंत्रके अर्थपर गुरु-शिष्यमें एक गहन विवाद प्रस्तुत हो जानेके कारण स्थगित हो गया (१) ।

इस विवादने बालक लक्ष्मणके जीवनमें एक महान् परिवर्तन प्रस्तुत कर दिया विद्यागुरुके अभावमें

(१) देखिये —सुन्दरानंद विद्याविनोद कृत—अचिन्त्यभेदाभेदवाद—परिशिष्ट पृ० १०१

अब वे स्वतन्त्र रूपसे वैष्णव-शास्त्रोंका अध्ययन करने लगें। इनके विद्या-गुरु श्रीयादवाचार्यने इन्हें मार डालनेके लिए अनेक षड्यंत्र रचे; किन्तु सब विफल रहा। इसी समय रङ्गनाथके नियामक श्रीयामुनमुनि (तत्कालीन श्रीसम्प्रदायके आचार्य) लक्ष्मणकी बहु-मुखी प्रतिभा, पांडित्य एवं स्वाभाविक वैष्णवताको सुनकर उन्हें अपने सम्प्रदायकी ओर आकर्षित करने के लिए बड़े ही इच्छुक हुए । उन्होंने अपने प्रधान शिष्य श्रीमहापूर्ण द्वारा लक्ष्मणको रङ्गक्षेत्र (श्रीरंगम्) बुलवाया। किन्तु उनके श्रीरङ्गक्षेत्र पहुँचनेके पूर्व ही मार्गमें श्रीयामुनाचार्यके वैकुण्ठ गमनका शोक समाचार सुनकर उनके अन्तिम दर्शन हेतु श्रीयामुनाचार्य की चिदानन्द देहके सम्मुख उपस्थितहुए। वहाँ लक्ष्मण ने देखा कि उनके हाथकी तीन अंगुलियाँ मुड़ी हुई हैं। उन्होंने अनुमान लगाया कि ये तीन अंगुलियाँ आचार्यके जीवनके तीन अभावोंकी प्रतीक ही होंगी जिन्हें कि वे अपने इस जीवनमें पूर्ण न कर सके होंगे। लक्ष्मणने छानबीन द्वारा उक्त तीन अभिलाषाओंको जानकर उपस्थित जनसमूहके समक्ष निम्न तीन प्रतिज्ञाएँ की:—

(१) मैं वैष्णव-धर्म ग्रहण कर माया-मुग्ध जीवों को पञ्च संस्कार सम्पन्न, द्रविड परम्परा पारदर्शी एवं सर्वदा शरणागति धर्ममें दीक्षित करूँगा।

(२) जगत्के कल्याण हेतु वेदान्त-सूत्र पर भाष्य की रचना करूँगा।

(३) पुराणरत्नके (विष्णुपुराणके) रचयिता श्रीपाराशर महामुनिके ऋणको चुकानेके लिए किसी श्रेष्ठ वैष्णवको पाराशर नाम प्रदान करूँगा। (क)

श्रीलक्ष्मण देशिककी इन तीन प्रतिज्ञाओंको करते समय श्रीयामुनाचार्यजी की एक-एक अंगुली क्रमशः सीधी हो गई। इससे उपस्थित जन-समुदाय आश्चर्यान्वित होनेके साथ आनन्द विभोर भी हो उठा।

सम्प्रदायमें प्रवेश एवं रामानुज नाम-प्राप्ति

उक्त घटनाके पश्चात् लक्ष्मण देशिकने श्रीवरदराजके आदेशसे श्रीयामुनाचार्यके प्रधान शिष्य श्रीमहापूर्णसे पांचरात्रिक दीक्षा प्राप्त की और इसी समय श्रीवरदराज द्वारा लक्ष्मण देशिकका नाम रामानुज रखा गया।

कुछ समयके बाद श्रीरामानुजने अपनी भार्याका त्याग कर, श्रीवरदराजके मन्दिरके सामने ही अनन्त सरोवरके पावन तटपर श्रीयामुनाचार्यको स्मरण कर (गुरु मान कर) त्रिदण्ड संन्यास ग्रहण किया और भागनेय दाशरथि, कुरेश, यादवप्रकाश एवं उनकी माताको श्रीसम्प्रदायकी प्रणालीके अनुसार अपना शिष्यत्व प्रदान किया। शनैः शनैः रामानुजका यश-सौरभ बड़ी तेजीसे फैलने लगा। अनेक विद्वान् तथा सम्भ्रान्त पुरुष उनसे पाञ्चरात्रिक विधिके अनुसार

(क) प्रपन्नामृतके अध्याय ९ श्लोक ६८-७५ के अनुसार श्रीरामानुजने अपने शिष्य कुरेशके ज्येष्ठ पुत्रका नाम पाराशर रखा था और उन्हें बचपनसे ही वैष्णव पद्धतिसे शिक्षा-दीक्षा प्रदान की, उनकी विद्वताको देखकर रामानुजने उन्हें वेदान्ताचार्यकी उपाधिसे सम्मानित भी किया। वही पाराशर रामानुजकेबाद श्रीसम्प्रदायके प्रधान आचार्य हुए।

दीक्षा प्राप्त कर जीवन सफल करने हेतु लालायित होने लगे।

केवलाद्वैतवादियोंसे संघर्ष

श्रीरामानुजकी बढ़ती हुई कीर्ति को देखकर कुछ ईर्ष्यालु व्यक्तियोंने उन्हें मार डालनेका भी निष्फल प्रयत्न किया। श्रीरामानुजने दिग्विजय प्राप्त करनेके लिए भारतके अनेक प्रदेशोंमें भ्रमण किया तथा अपनी इस यात्रामें उन्होंने बड़े-बड़े केवलाद्वैतवादियों (शांकर मतावलम्बियों) को परास्त कर उन्हें अपने मतमें दीक्षित भी किया। कहा जाता है कि श्रीयामुनाचार्यकी चिदानन्द देहके समक्ष की हुई अपनी प्रतिज्ञाकी पूर्ति हेतु अपने पूर्वाचार्य श्रीबोधायन कृत "वृत्ति" की खोजमें अपने शिष्य कुरेशके (वत्सांकमिश्र) साथ शारदापीठ (कश्मीर प्रदेशमें स्थित तत्कालीन शांकर मतावलम्बियोंका प्रमुख केन्द्र) पहुँचे और वहाँ अद्वैतवादियोंसे बोधायन-वृत्तिकी याचना की। किन्तु उन लोगोंने उक्त वृत्ति नहीं दी। शारदादेवीजीकी असीम कृपासे श्रीरामानुज किसी प्रकार इस "वृत्तिको" प्राप्त कर वहाँसे लौट ही रहे थे कि अद्वैतवादियोंने उनका पीछा किया और एक माहके बाद उन्हें पकड़ कर उनसे इस "वृत्तिको" छीन लिया। श्रीरामानुज इस घटनासे अत्यन्त दुःखी हुए। किन्तु कुरेशने यह कहकर उन्हें सान्त्वना दी कि इस एक महीनेकी अवधिमें उस बोधायन वृत्तिका निरन्तर पाठ करनेसे यह "वृत्ति" सम्पूर्ण रूपसे मुझे कण्ठस्थ हो गई है। अतः उस वृत्तिकी द्वितीय प्रति मैं शीघ्र ही तैयार कर दूँगा।

श्रीरामानुजने स्वस्थान लौटकर कुरेशकी सहायता से उक्त बोधायन वृत्तिका अवलम्बन कर वेदव्यासके ब्रह्मसूत्रका सुप्रसिद्ध श्रीभाष्य लिखा (क) और अपने शिष्य कुरेशनन्दनको पाराशर नाम प्रदान किया। इस प्रकार उन्होंने श्रीयामुनाचार्यकी चिदानन्द देहके समक्ष की हुई अपनी तीनों प्रतिज्ञाओंको पूर्ण किया।

दिग्विजयी रामानुज

कहा जाता है कि श्रीरामानुज श्रीभाष्यकी रचना के उपरान्त ही दिग्विजयकी भावनासे प्रेरित होकर अपने कुछ शिष्योंके साथ पुनः शारदापीठ गये और उसी स्थल पर शारदादेवीजीने श्रीरामानुजको "भाष्यकार" की उपाधिसे भूषित किया। इसके

(क) श्रीभाष्यकी निर्माण-तिथि पर विभिन्न मत है:—

१—श्रीरामानुचार्य दिव्य चरितायोके अनुसार श्रीभाष्यकी रचना सम्वत १०७७ शकाब्द (=११५५ ई०) में हुई थी।

२—T. A. Gopi Nath Roa's Lectures (1917 A. D.) के अनुसार उक्त ग्रन्थकी रचना सन् ११२५ ई० में हुई थी। इस मतके अनुसार सन् १११७ ई० में राजा कुलोतुङ्गकी मृत्युके बाद श्रीरामानुज पुनः श्रीरंगम् लौट आये और वहाँ उन्होंने श्रीकुरेशकी सहायतासे श्रीभाष्यकी रचना की।

३—श्रीमाध्वसम्प्रदायके "छलारी स्मृति" ग्रन्थके अनुसार सन् ११२७ ई० तक श्रीरामानुजका दार्शनिक सिद्धान्त अत्यन्त पुष्ट एवं व्यापक हो चुका था। इस प्रकार सन् ११२५ ई० में ही श्रीभाष्यकी रचना हुई होगी।

बाद उन्होंने काशी, पुरी एवं दक्षिण देशके विभिन्न स्थलोंका भ्रमण किया और वहाँके मुख्य मायावादी आचार्योंको परास्त कर स्वसाम्प्रदायिक मठोंकी स्थापना की। उस समय श्रीरङ्गम् चोलनरेश कुलोतुङ्ग के शासनमें था। राजा कुलोतुङ्ग कट्टर शैव था। उसने श्रीरामानुजको मार डालनेके लिए छलसे उन्हें अपने दरबारमें बुलाया। किन्तु कुरेशने कुलोतुङ्गके मनोगत भावोंको जानकर श्रीरामानुजको श्रीरङ्गमसे अन्यत्र पहुँचा दिया और स्वयं रामानुजके वेषमें राजाके दरबारमें उपस्थित हुए। यह घटना सन् १०९६ ई० के आसपास की है जब कि श्रीरामानुजकी आयु ८० वर्ष की थी (देखिये भागवत सम्प्रदाय पृ० २०४) राजा ने कुरेशको रामानुज समझ कर उनके दोनों नेत्रोंको निकलवा दिया; किन्तु भगवान् श्रीवरदराजकी कृपा से कुरेशको दिव्य-नेत्र प्राप्त हो गये और साथ ही साथ राजा कुलोतुङ्गके कण्ठमें एक भयंकर घाव होगया जिसमें कीड़े पड़ जानेके कारण उसकी दुःखद मृत्यु हो गई। इसी कीड़ेवाले भयंकर घावके कारण ही कुलोतुङ्गका नाम क्रमिकण्ठ भी प्रसिद्ध है।

श्रीरामानुजने सन १०९८ ई० में मैसूर शासक श्रीविट्ठिदेव और जैन धर्मावलम्बी राजा श्रीवल्लभराव (सन् १११८ से ११२० ई० तक) तथा अनेकों बौद्धों को वैष्णव धर्ममें दीक्षित किया। कुलोतुङ्गकी मृत्युका समाचार सुनकर श्रीरामानुज (सन् १११८ ई०) पुनः श्रीरङ्गम् गये और वहाँ अनेकों लुप्त श्रीविग्रहों का उद्धार, मन्दिर एवं मठोंकी प्रतिष्ठा कर स्वयं वहाँ वैष्णव धर्मके व्यापक प्रचार हेतु निवास करने लगे।

श्रीरामानुज अपने सम्प्रदायमें श्रीलक्ष्मणके अवतार माने जाते हैं। इनके प्रकट कालमें ही इनकी एक भव्य प्रतिमा श्रीरङ्गमूमें प्रतिष्ठित की गई थी। इस प्रतिमाकी पूजा आज तक निरन्तर रूपमें होती चली आ रही है,

श्रीरामानुजका वैकुण्ठ-गमन माघ शुक्ला दशमी शनिवार शकाब्द १०५९ (= सन् ११३७ ई०) में हुआ।

उपसंहार

श्रीरामानुज अत्यन्त उदार महापुरुष थे। वे सांसारिक जीवोंके दुःखोंसे सदैव दुःखी रहा करते थे। एकबार तत्कालीन प्रसिद्ध महात्मा श्रीनाम्बिने इन्हें अष्टाक्षर श्रीनारायण-मंत्रकी दीक्षा दी और कहा कि यह मंत्र जगद्-उद्धारक है। इसलिए वे इसे किसी अन्यको न बताकर अत्यन्त गुप्त रखें। किन्तु श्रीरामानुजने सांसारिक जीवोंका सामुहिक रूप में उद्धार करनेके लिए, मकानकी छतों पर तथा ऊँचे-ऊँचे वृक्षों पर चढ़कर जनताको उक्त मंत्रका उपदेश देना आरम्भ कर दिया। गुरु नाम्बि द्वारा प्रश्न किये जाने पर श्रीरामानुजने उत्तर दिया कि यदि इस मंत्रके गुप्त न रखनेसे मुझे नरककी प्राप्ति होगी तो भी मुझे इसकी चिन्ता नहीं है; किन्तु इस मंत्रको सुन कर इस संसारकी यातनाओंसे पीड़ित करोड़ों जीवों का तो उद्धार हो जायेगा। इस प्रकारकी अनेक घटनाओंसे श्रीरामानुजाचार्यजीका जीवन ओतप्रोत है।

—केदारदत्त तन्त्राडी एम. ए. सा० रत्न, साहित्यालङ्कार

1. The life of Ramanuj by Shri Govindacharya, Madras.
2. Three great Acharyas Madras 1906.

श्रीचैतन्य-शिक्षामृत

द्वितीय वृष्टि (गौण-विधि विचार)

प्रथम धारा [गौण विधिके विभाग]

जीवके चरम प्रयोजनस्वरूप प्रेमको प्राप्त करनेके लिये समस्त शास्त्रोंने ही एकस्वरसे भक्तिको ही एकमात्र अभिधेय या उपाय स्थिर किया है—इसे प्रथम वृष्टिमें दिखलाया गया है । कर्म और ज्ञान साक्षात् अर्थात् मुख्य अभिधेय नहीं हैं, इसका विचार साधारण रूपमें दिया गया है । परन्तु कर्म और ज्ञानकी बिलकुल ही आवश्यकता नहीं है—ऐसी बात भी नहीं है, बल्कि इन दोनोंकी कुछ-कुछ आवश्यकता भी है । अतएव कर्म और ज्ञान गौण उपाय माने गये हैं और मुख्य उपाय श्रवण-कीर्तन आदि रूप भक्तिको ही निर्दिष्ट किया गया है । कर्म और ज्ञान गौण होने पर भी जडबद्ध जीवोंके लिये अभिधेय बतलाये गये हैं (क) ।

ज्ञान-कर्म गौण अभिधेय हैं और भक्ति मुख्य अभिधेय है । ज्ञान और कर्म—भक्तिको प्राप्त करने के लिये साधन हैं और भक्ति साक्षातरूपसे प्रेमको प्रकट करानेके लिये साधन है । इस विषयका आगे विस्तारपूर्वक वर्णन किया जायगा । शरीर, मन और समाजको भक्तिके अनुकूलरूपमें व्यवस्थापित कर सकनेमें ही कर्म और ज्ञानका अभिधेयत्व है, अन्यथा वैसे-वैसे कर्म और ज्ञानको शास्त्रोंमें बहिर्मुख बतलाते हुए उनकी प्रचुर निन्दा देखी जाती है । हम सबसे पहले यहाँ गौण-विधिका विस्तार पूर्वक विवेचन कर मूल सिद्धान्तके विषय पर विचार करेंगे ।

गौण-विधि तीन प्रकारकी होती है—(१) जन निष्ठ-विधि(२) समाज निष्ठ-विधि और (३) परलोक निष्ठ-विधि ।

जन-निष्ठ विधि

इनमेंसे जननिष्ठविधि दो प्रकारकी होती है–(१) शरीरनिष्ठ विधि और (२) मनोनिष्ठ विधि । मानव शरीरको पुष्ट बनाने और स्वस्थ्य रखनेके लिये जो व्यवस्थाएँ हैं उनको शरीरनिष्ठ विधि (ख) कहते हैं : यथायोग्य आहार, यथायोग्य पान, यथायोग्य

(क) योगास्त्रयो मया प्रोक्ता नृणां श्रेयो विधित्सया । ज्ञानं कर्म च भक्तिश्च नोपायोऽन्योऽस्ति कुत्रचित् ॥
[भा. ११।२०।६]

(ख) नात्यश्नतस्तु योगोऽस्ति नचैकान्तमनश्नतः । न चातिस्वप्नशीलस्य जाग्रतो नैव चार्जुन ॥
युक्ताहारविहारस्य युक्तचेष्टस्य कर्मसु । युक्तस्वप्नावबोधस्य योगो भवति दुःखहा ॥
यदा विनियतं चित्तमात्मन्येवावतिष्ठते । निस्पृहः सर्वकामेभ्यो युक्त इत्युच्यते तदा ।
सर्वभूतस्थमात्मानं सर्वभूतानि चात्मनि । ईक्षते योगयुक्तात्मा सर्वत्र समदर्शनः ॥
[गीता ६।१६-१८, २९]

निद्रा तथा यथायोग्य व्यायाम इत्यादि जितनी प्रकारकी विधियाँ हैं तथा रोग होने पर आयुर्वेद शास्त्रमें चिकित्सा सम्बन्धी जो सब व्यवस्थाएँ हैं, वे सभी शरीर-निष्ठ-विधियाँ हैं। शरीर-निष्ठ-विधियोंका पालन नहीं करनेसे मनुष्य स्वच्छन्दरूपसे जीवन-यात्रा निर्वाह नहीं कर सकता। साथ ही मनोनिष्ठ-विधियोंका अवलम्बन नहीं करनेसे मनकी उपलब्धिशक्ति, धारणाशक्ति, कल्पना और विभावना शक्ति तथा विचारशक्ति—ये पुष्ट और विकशित नहीं हो पातीं और फलस्वरूप ये अपने-अपने कार्यको भलीभाँति करनेमें असमर्थ हो पड़ती हैं। विज्ञान, शिल्प आदिकी भी उन्नति नहीं होती। मनका कुसंस्काररूप तमः भी नष्ट नहीं होता। विषयोंके सम्बन्धमें शुद्ध ज्ञान भी नहीं हो पाता। बुद्धिको जड़-चिन्तासे मोड़कर परमेश्वरकी चिन्तामें नियुक्त नहीं किया जाता। अन्तमें पापचिन्ता और निरीश्वर-भाव—ये दोनों मनको वशीभूत कर मनुष्यको पशु-तुल्य बना देते हैं। इसलिये मनुष्य जीवनको सफल बनानेके लिये जननिष्ठ - विधिका पालन नितान्त अवश्यक है।

समाज-निष्ठ विधि

मनुष्य समाजबद्ध होकर वास करते हैं और वे समाजको उन्नत और निष्पाप रखनेके लिये समाज-निष्ठ-विधियोंकी व्यवस्था करते हैं। समाज-निष्ठ-विधिके अन्तर्गत विवाह-विधि एक बड़ी ही उत्तम विधि है। यदि मनुष्य समाजमें विवाहकी विधि नहीं होती तो वह इतना उन्नत नहीं हो पाता*। वैसी दशामें मनुष्य भी पशुओंकी भाँति उच्छृङ्खल होकर भ्रमण करते। किसी किसी देशमें पहले-विवाहकी प्रथा नहीं थी। परन्तु जब उन देशोंमें नाना-प्रकारके समाजिक उत्पात होने लगे तब वहाँ भी विवाह-विधिका प्रचलन हुआ। जब एक पुरुष उच्छृङ्खलता त्यागकर परमेश्वरको साक्षी रखकर समाजके लोगोंकी सम्मतिसे एक स्त्रीको ग्रहणकर संसार-यात्राकी नींव रखता है, तो उसे विवाह कहते हैं। तत् पश्चात् पुत्र-कन्य होने पर उनका पालन-पोषण करते हैं तथा उचित शिक्षा देकर उनके जीवन-निर्वाहकी व्यवस्था कर देते हैं। संसारमें वर्तमान मनवबृन्द परस्पर भ्रातृभाव स्थापन, दूसरोंका कष्ट निवारण, न्यायानुसार अर्थसंग्रह द्वारा जीविका-निर्वाह, सदा सत्यपालन, मिथ्याका दमन—इत्यादि कार्योंके द्वारा संसारकी उन्नतिकी व्यवस्था करते हैं।

समाज-निष्ठ-प्रवृत्ति मानवजातिका प्रधान धर्म है। सभी देशोंमें सभी कालोंमें मानवजातिमें इस धर्मको लक्ष्य किया जाता है। जिस देशमें वहाँके लोगोंकी जितनी ही अधिक सामाजिक उन्नति होती है तथा उनकी सभ्यताकी समृद्धि होती है, उस देशमें समाज-निष्ठ - विधि भी उतनी ही अधिक परिपक्व और बद्धमूल होती है। संसारकी सारी जातियोंमें आर्यजातिकी सामाजिक उन्नति और सभ्यता सबसे अधिक है—यह सर्ववादी सम्मत है। आर्यजातिकी जितनी भी शाखा-प्रशाएँ निकली हैं,

* न गृहं गृहमित्याहुर्गृहिणी गृहमुच्यते। तया हि सहितः सर्वान् पुरुषार्थान् समश्नते॥
[महाप्रभूदाहृत स्मृतिवचनम्]

उनमें भारतवासी आर्यशाखा ही विद्या, बुद्धि और सामाजिक विषयोंमें सर्वाधिक उन्नत है, इसमें तनिक भी सन्देह नहीं। वही आर्यशाखा आज वृद्धावस्था को प्राप्त होकर बलहीन हो पड़ी है, इसी हेतु उसका सामाजिक सम्मान भी कम हो गया है, ऐसी बात नहीं है। किसी अर्वाचीन व्यक्तिके द्वारा भारतीय सभ्यता और समाजकी उन्नतिका प्रतिवाद किये जानेके कारण भारतीय आर्यशाखा वास्तवमें हेय और लघु नहीं हो जायगी। भारतीय आर्यशाखाके हाथोंसे समाज निष्ठ-विधिकी कितनी उन्नति हुई, इसे वेद-शास्त्रोंके अध्ययनसे ही जाना जा सकता है। हमारे भारतीय ऋषियोंके द्वारा समाज-निष्ठ-विधियोंकी चरम उन्नति हुई थी, इसे संसारके सभी सहृदय और वैज्ञानिक व्यक्ति स्वीकार करेंगे।

वर्ण और आश्रमविधि

ऋषियोंने सूक्ष्म वैज्ञानिक-विचारोंकी भित्ति पर समाज-निष्ठ-विधिको दो भागोंमें विभक्त किया है—(१) वर्ण-विधि, (२) आश्रम-विधि*। समाज-निष्ठ मानवोंकी अवस्था दो प्रकार की होती है—(१) स्वभाव और (२) अवस्थान। जन्म-निष्ठ धर्मसे स्वभावका गठन होता है तथा समाज-निष्ठ-धर्मसे अवस्थानकी सुष्ठुता सम्पादित होती है। सामाजिक होनेसे ही मनुष्यका जननिष्ठ धर्म नष्ट नहीं हो जाता है, बल्कि समाजके सम्बन्धसे वह और भी पुष्ट होता है। मनुष्यके स्वभावसे वर्णविधि और अवस्थासे आश्रम विधिकी व्यवस्था की गयी थी। मनुष्यकी शारीरिक और मानसिक वृत्तियाँ अनुशीलन करते-करते क्रमशः विकशित होकर एक स्थायी अवस्थाको प्राप्त होती हैं। उस स्थायी अवस्थामें जो प्रवृत्ति दूसरी-दूसरी प्रवृत्तियों पर प्रभुत्व स्थापन करती है, वही प्रवृत्ति उस मनुष्यका स्वभाव कहलाती है। स्वभाव चार प्रकारके हैं—ब्रह्मस्वभाव, क्षत्रस्वभाव, वैश्यस्वभाव और शूद्रस्वभाव।

चार-प्रकारके स्वभाव

मनुष्यकी उत्कृष्ट प्रवृतिसे ही उपर्युक्त चार प्रकार के स्वभाव उदित होते हैं। नीच प्रवृत्तिसे अन्त्यज स्वभाव पैदा होता है। अन्त्यज-स्वभावके स्वभावको त्याग करनेके अतिरिक्त दूसरी कोई विधि नहीं है+ जन्मसे लेकर दृढ़ प्रवृत्तिके उदय होनेतक सङ्ग और अनुशीलन (शिक्षा आदि) के अनुसार ही प्रबल प्रवृत्तिका बीज अंकुरित होता है, पौधेके रूपमें क्रमशः बढ़ता है, पुनः बढ़कर वृक्षका रूप धारणकर पुष्ट होता रहता है। पूर्व कर्मोंके अनुसार स्वभाव उदित होता है—ऐसा शास्त्रकारोंने लिखा है। जिस

---

* यस्त्वयाभिहितः पूर्वं धर्मस्तद्भक्तिलक्षणः। वर्णाश्रमाचारवतां सर्वेषां द्विपदामपि॥
(भा० ११।१७।१)

+ अशौचमनृतं स्तेयं नास्तिक्यं शुष्कविग्रहः। कामः क्रोधश्च तर्षश्च स्वभावोऽन्त्यावसायिनाम्॥
(भा० ११।१७।२०)

वंशमें जिसका जन्म होता है, उसी वंशका स्वभाव ही बचपनसे संसर्गके कारण उसका अपना स्वभाव बन जाता है। पीछेसे विद्याशिक्षा और दूसरे-दूसरे अच्छे या बुरे संसर्गोंके द्वारा बचपनके गठित स्वभाव में कुछ उन्नति या अवनति होगी, यही नैसर्गिक है। शूद्रस्वभाववाले मनुष्यको शूद्रस्वभावापन्न संतान और ब्रह्मस्वभाववाले मनुष्यको ब्रह्मस्वभावापन्न सन्तान उत्पन्न होना ही उचित है। परन्तु ऐसा सर्वत्र होगा ही—ऐसी कोई निश्चित विधि नहीं है। इसी लिये शास्त्रकारोंने स्वभाव निरूपण पूर्वक वर्णविधान करनेके अभिप्रायसे संस्कार-विधियोंकी व्यवस्था की थी। कालके प्रभावसे संस्कार-विधिमें बहुत परिवर्तन हो गया है। इस वर्ण निर्णायक संस्कार विधिके लगभग लुप्त हो जानेके कारण ही देशकी अवनति हुई है (क)। वर्ण-विधि यथार्थ रूपमें सामाजिक धर्म हैं, इसमें सन्देह नहीं है।

अवस्थान

विज्ञानके अनुसार अवस्थान चार प्रकारके होते हैं—(१) ब्रह्मचर्य, (२) गार्हस्थ्य, (३) वानप्रस्थ और (४) संन्यास। (१) जो लोग विवाहसे पूर्व विद्योपार्जन और देश-भ्रमण करते हैं, वे ब्रह्मचारी हैं। (२) जो विवाह करके संसारमें अवस्थित होते हैं, वे गृहस्थ हैं। (३) जो लोग अधिक आयु होनेपर कार्यों से विरत होकर निर्जनमें वास करते हैं, वे वानप्रस्थ हैं तथा (४) जो संसारके समस्त बन्धनोंका सर्वथा परित्याग कर विचरण करते हैं, वे संन्यासी हैं। वर्ण और आश्रमके लिये जो धर्म स्थापित हुआ है, उसका नाम वर्णाश्रम धर्म है। यही धर्म भारतीय आर्य-शाखाकी सामाजिक-विधि है। जिस देशमें इस विधि का अभाव है, उस देशको उन्नत देश नहीं कहा जा सकता है। इस धारामें इस विषयका साधारणरूपमें दिग्दर्शन मात्र कराया गया है। अगली तृतीय धारा में इसके सम्बन्धमें विस्तृत विवेचन प्रस्तुत किया जायगा।

—ॐविष्णुपाद श्रील भक्तिविनोद ठाकुर

(क) यस्य यल्लक्षणं प्रोक्तं पुंसो वर्णाभिव्यञ्जकम्। यदन्यत्रापि दृश्येत तत्तेनैव विनिर्दिशेत्॥
(भा० ७।११।१४)

श्रीश्रीव्यासपूजाका निमंत्रण-पत्र

श्रीश्रीगुरु-गौराङ्गौ जयतः

श्रीगौड़ीय वेदान्त समिति

श्रीदेवानन्द गौड़ीय मठ,
तेघरिपाड़ा, पो०—नवद्वीप (नदिया)
१६ जनवरी १९६५

नारायणं नमस्कृत्य नरञ्चैव नरोत्तमम् ।
देवीं सरस्वतीं व्यासं ततो जयमुदीरयेत् ॥

व्यासकुल-श्रमणसङ्घाराध्य-वेदान्तविद्याश्रितेषु—

आगामी ८ फाल्गुन, २० फरवरी १९६५ ई० शनिवारको व्यासाभिन्न **जगद्गुरु ॐविष्णुपाद अष्टोत्तरशत श्रीश्रीमद्भक्तिसिद्धान्त सरस्वती गोस्वामी 'प्रभुपाद'** की आविर्भाव-(माघी कृष्ण पञ्चमी) तिथिपूजाके उपलक्ष्यमें श्रीगौड़ीय वेदान्त समितिके उद्योगसे श्रीउद्धारण गौड़ीय मठ, चुचुड़ामें आगामी ६ फाल्गुन, १८ फरवरी १९६५ ई० वृहस्पतिवारको उल्लिखित श्रील सरस्वती प्रभुपादके अन्तरंग प्रिय पार्षदवर **परिव्राजकाचार्यवर्य ॐविष्णुपाद परमहंस श्रीश्रीमद्भक्तिप्रज्ञान केशव गोस्वामी महाराज** की शुभ-आविर्भाव-तिथि (माघी-कृष्ण-तृतीया) से लेकर ८ फाल्गुन, २० फरवरी, शनिवार तक तीन दिन **श्रीश्रीव्यासपूजा और तदङ्गीभूत पूजा-पंचक** अर्थात् श्रीकृष्ण पञ्चक, व्यास पञ्चक, मध्वादि आचार्य पञ्चक, सनकादि-पञ्चक, श्रीगुरुपञ्चक और तत्त्वपञ्चककी पूजा और होम आदि अनुष्ठित होंगे। प्रति दिन हरिकीर्तन, भागवत-पाठ, भाषण, स्तवपाठ, श्रीहरि-गुरु-वैष्णव-संशन और अञ्जलि-प्रदान आदि इस महोत्सवके प्रधान और विशेष अङ्ग होंगे।

धर्म-प्राण सज्जन-महोदयगण उक्त शुद्धभक्तिके अनुष्ठानमें बन्धु-बान्धवोंके साथ योगदान करनेसे समितिके सदस्यवर्ग परमानन्दित और उत्साहित होंगे। इस महदनुष्ठानमें योगदान करनेमें असमर्थ होने पर प्राण, अर्थ, बुद्धि और वाक्य द्वारा समितिके सेवाकार्यके प्रति सहानुभूति प्रदर्शन करने पर भी भगवत् सेवोन्मुखी सुकृति अर्जित होगी।

वैसासक्यानुगत्याभिलाषी—
सम्यवृन्द
श्रीगौड़ीय वेदान्त समिति

विशेष द्रष्टव्य—वृहस्पतिवारको श्रीपूजा-पंचकादि, श्रीलआचार्यदेवके श्रीपादपद्मोंमें पुष्पांजलि, विभिन्न भाषाओंमें प्राप्त प्रबन्ध-पाठ, भाषण। शुक्रवारको श्रीगुरुतत्त्वके सम्बन्धमें प्रवचन। शनिवारको श्रील प्रभुपादके श्रीपाद-पद्मोंमें अञ्जलि-प्रदान, शामको प्रबन्धादि पाठ. एवं श्रीमद्भागवतसे श्रीव्यासदेवके सम्बन्धमें आलोचना।

❀ श्रीश्रीगुरुगौराङ्गौ जयतः ❀

श्रीगौड़ीय वेदान्त समिति

श्रीदेवानन्द गौड़ीय मठ
तेघरिपाड़ा, पो० नवद्वीप,
(नदीया)

सादर सम्भाषणपूर्वक निवेदन—

कलियुग-पावनावतारी स्वयं भगवान् श्रीश्रीशचीनन्दन गौरहरि की निखिल भुवन-मङ्गलमयी आविर्भाव तिथि-पूजा (फाल्गुनी पूर्णिमा) के उपलक्ष्यमें श्रीगौड़ीय वेदान्त समिति के उद्योग से उपरोक्त ठिकाने पर आगामी २८ फाल्गुन, १२ मार्च शुक्रवारसे ४ चैत्र, १८ मार्च, बृहस्पतिवार पर्यन्त सप्ताहकालव्यापी एक विराट महोत्सव का अनुष्ठान होगा। इस महदनुष्ठानमें प्रतिदिन प्रवचन, कीर्त्तन, वक्तृता, इष्ट-गोष्ठी, श्रीविग्रह-सेवा, महाप्रसाद वितरण प्रभृति विविध भक्त्यङ्ग याजित होंगे।

इस उपलक्ष्य में श्रीश्रीनवद्वीपधाम के अन्तर्गत नौ द्वीपों का दर्शन तथा तत्तत्स्थान-माहात्म्य-कीर्त्तन करते हुए सोलह-क्रोश की परिक्रमा होगी। गत वर्ष की तरह इस वर्ष भी श्रीनृसिंहपल्ली, मामगाछी एवं श्रीधाम मायापुरमें मध्याह्न भोगराग और प्रसाद सेवाके पश्चात् संध्याको श्रीनवद्वीपमें लौट आने की सुव्यवस्था की गई है।

धर्मप्राण सज्जन-वृन्द उक्त भक्ति-अनुष्ठान में सबान्धव योगदान कर समिति के सदस्यवर्ग को परमानन्दित एवं उत्साहित करेंगे। इस महदनुष्ठान का गुरुत्व उपलब्धि कर प्राण, अर्थ, बुद्धि और वाक्य द्वारा समिति के सेवाकार्य में सहानुभूति प्रदर्शन कर अनुगृहीत करेंगे। इति १६ दिसम्बर, १९६४

शुद्धभक्त कृपालेश-प्रार्थी—
"सभ्यवृन्द"
श्रीगौड़ीय वेदान्त समिति

द्रष्टव्य—विशेष विवरण के लिये अथवा साहाय्य (दानादि) देनेके लिये त्रिदण्डिस्वामी श्रीमद्भक्ति-प्रतान केशव महाराजके निकट उपर्युक्त ठिकाने पर लिखें या भेजें।